www.jagran.com राष्ट्रीय संस्करण
दैनिक जागरण
शुक्रवार 29 नवंबर 2019

दैनिक जागरण

चिंता भरा एक दिन काम भरे एक दिन से ज्यादा थकाने वाला होता है

खतरनाक अभिव्यक्ति

भाजपा को भोपाल की सांसद प्रज्ञा सिंह ठाकुर के कारण जिस तरह फजीहत का सामना करना पड़ रहा है उससे यही साबित होता है कि राजनीतिक फायदे के लिए जिस-तिस को गले लगाने के क्या दुष्परिणाम होते हैं? यह पहली बार नहीं है जब प्रज्ञा ठाकुर ने भाजपा को असहज किया हो। वह इसके पहले भी कई बार ऐसा कर चुकी हैं। समझना कठिन है कि जब उन्हें पहले भी नाथूराम गोडसे के महिमामंडन के कारण शर्मसार होकर अपना बयान वापस लेना पड़ा था तब फिर उन्होंने वही गलती दोबारा क्यों की और वह भी संसद में? साफ है कि वह प्रधानमंत्री के इस कथन को भूल गईं कि वह उन्हें मन से माफ नहीं कर पाएंगे? क्या इससे खराब बात और कोई हो सकती है कि जब मोदी सरकार महात्मा गांधी की 150वीं जयंती जोर-शोर से मना रही है तब प्रज्ञा ठाकुर को यह समझ नहीं आ रहा कि उन्हें उनके हत्यारे नाथूराम के बारे में क्या कहना चाहिए और क्या नहीं? उन्हें शायद इससे मतलब ही नहीं कि मोदी सरकार गांधी जी को किस तरह हर स्तर पर प्राथमिकता दे रही है? यह भी हो सकता है कि उन्हें इसका आभास ही न हो कि उनकी सोच कितनी क्षुद्रता भरी है?

भाजपा को इससे चिंतित होना चाहिए कि प्रज्ञा ठाकुर जैसे कुछ और ऐसे लोग पार्टी में हैं जो दबे-छिपे स्वर में गोडसे का महिमामंडन करते हैं। ऐसे लोगों से दूरी बनाने का काम दृढ़ता से किया जाना चाहिए, ताकि यह साफ संदेश जाए कि यदि कोई गांधी जी की नीतियों से असहमत भी है तो भी उसे उनके हत्यारे के गुणगान का अधिकार नहीं। ऐसा करना तो एक तरह से अतिवाद को समर्थन देना है। किसी अतिवादी तत्व का गुणगान एक खतरनाक प्रवृत्ति है। इस प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की आड़ लेने का अवसर नहीं दिया जाना चाहिए। वास्तव में कैसा भी अतिवाद हो उसके विरोध की अपेक्षा हर भारतीय से की जाती है, क्योंकि यही भारत का स्वभाव है और वह इसी के लिए जाना जाता है। इसमें संदेह है कि प्रज्ञा ठाकुर को रक्षा संबंधी संसदीय समिति से हटाने और संसद के इस सत्र से बाहर रखने के फैसले से उस क्षति की भरपाई हो सकती है जो उनके घोर आपत्तिजनक बयान से भाजपा और सरकार को पहुंची है। भाजपा को यह आभास होना चाहिए कि प्रज्ञा ठाकुर सरीखे नेता केवल उसकी छवि पर पानी ही नहीं फेरते, बल्कि राजनीतिक विरोधियों को हमले का अवसर भी प्रदान करते हैं। बेहतर हो कि भाजपा इस पर गंभीरता से चिंतन-मनन करे कि राजनीतिक लाभ के लिए हर तरह के तत्वों को अपनाना कहां तक उचित है?

उप चुनाव की कसौटी

बंगाल की तीन सीटों कलियागंज, करीमपुर और खड़गपुर सदर सीटों का उप चुनाव किसी अग्निपरीक्षा से कम नहीं था। यह चुनाव 2021 में होने वाले विधानसभा चुनावों के लिए लिटमस टेस्ट भी था और राजनीतिक दलों के प्रति जनता का रुझान का आकलन भी। नतीजों ने राजनीतिक विश्लेषकों को चौंका दिया है, क्योंकि तीनों सीटें सत्ताधारी तृणमूल के खाते में चली गई हैं। लोकसभा चुनाव में 18 सीटों पर विजयश्री हासिल कर भाजपा बंगाल में मजबूत समीकरण बन गई थी, लेकिन छह माह बाद हुए विधानसभा उपचुनाव में उसे एक भी सीट पर जीत नहीं मिली। यहां तक कि बंगाल भाजपा के अध्यक्ष दिलीप घोष के सांसद बनने से रिक्त हुई खड़गपुर सदर सीट भी हार गई। गौर करें तो लोकसभा चुनाव में भाजपा के व्यापक उभार से तृणमूल की नींद उड़ गई थी। खिसकते जनाधार को वापस पाने की तृणमूल के सामने चुनौती थी। अपने को नए सिरे से आजमाने के लिए मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने उपचुनाव को ही हथियार बनाया। वह पूरी ताकत से चुनाव मैदान में उतरीं और इसके पहले ही उनकी पूरी सेना बंगाल की जनसमस्याओं को हल करने में जुट गई। विशेष रूप से इन तीनों क्षेत्रों में अभियान चलाकर जन समस्याओं को हल किया गया। इसमें सर्वाधिक कारगर नुस्खा बना एनआरसी का मुद्दा। ममता ने भाजपा अध्यक्ष और गृह मंत्री अमित शाह को सीधे चुनौती देकर दावा कर दिया कि वह बंगाल में एनआरसी लागू नहीं होने देंगीं। आरोप-प्रत्यारोप के बीच तो यही लगा कि शाह पर पलटवार कर ममता सिर्फ जुबानी जंग लड़ रही हैं, लेकिन सही मायने में वह बांग्लादेश से घुसपैठ कर यहां जमे हुए लोगों को मजबूती से अपना बना रही थीं। करीमपुर और कलियागंज विधानसभा क्षेत्र की सरहदें बांग्लादेश को छूती हैं और दोनों जगह बांग्लादेशी मुसलमान निर्णायक भूमिका में हैं। लोकसभा चुनाव में मुस्लिम मतों में बिखराव हुआ था, लेकिन इस उप चुनाव में माकपा और कांग्रेस गठबंधन को जिस तरह मतदाताओं ने समेट दिया उससे यह साफ हो गया कि भाजपा के खिलाफ ममता अपने परंपरागत मतदाताओं के साथ ही मुस्लिम वोटरों के ध्रुवीकरण में कामयाब हो गईं। एक बात और भी है। भाजपा ने यह आरोप लगाया है कि ममता ने सत्ता का दुरुपयोग किया है। चुनाव में जिस तरह हिंसक घटनाएं हुईं उससे चुनाव की निष्पक्षता पर भी सवाल खड़े हुए। करीमपुर के भाजपा उम्मीदवार जयप्रकाश मजूमदार पर हुए हमले ने इस आरोप को बल भी दिया। हालांकि तृणमूल के लोग इसे नकारते हैं। इस टकराव के बीच यह संकेत मिल गया है कि 2021 में तृणमूल और भाजपा की सीधी टक्कर होगी।

सत्ता के लिए विचारधारा को तिलांजलि

डॉ. एके वर्मा

आखिर जो कांग्रेस भाजपा को अपना धुर वैचारिक विरोधी मानती है वह उसके उग्र संस्करण शिवसेना से हाथ कैसे मिला सकती है?

महाराष्ट्र में अंततः उद्धव ठाकरे के नेतृत्व में शिवसेना-राकांपा-कांग्रेस गठबंधन की सरकार बन ही गई। यह भारतीय राजनीति में विचारधारा के अंत का ही नहीं, वरन विचारधारा पर राजनीतिक महत्वाकांक्षा के वर्चस्व का भी ज्वलंत उदाहरण है। कल तक शिवसेना और कांग्रेस-राकांपा विचारधारा के दो ध्रुवों की तरह थे। शिवसेना जहां कट्टर हिंदुत्ववादी यानी दक्षिणपंथी पार्टी के रूप में जानी जाती थी वहीं कांग्रेस और राकांपा वामपंथी-मध्यमार्गी के रूप में। दोनों में गंभीर वैचारिक मतभेद रहे, लेकिन आज सत्ता के लालच में दोनों ही ध्रुवों ने वैचारिक मतभेद भुलाकर एक-दूसरे का हाथ थाम लिया। समय ही बताएगा कि यह प्रयोग कितने दिनों चलेगा, लेकिन इतना निश्चित है कि इसका खामियाजा इन तीनों ही दलों को उठाना पड़ेगा। ऐसा ही प्रयोग कुछ समय पूर्व कांग्रेस ने कर्नाटक में जद-एस के साथ और उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में समाजवादी पार्टी के साथ किया था। इसके परिणाम उसके लिए घातक ही रहे थे। इसी की पुनरावृत्ति 2019 में उत्तर प्रदेश में सपा-बसपा ने लोकसभा चुनाव में की और उसमें दोनों को ही नुकसान हुआ।

ऐसा माना जाता है कि जनता की याद्दाश्त कमजोर होती है, लेकिन उसकी याद्दाश्त इतनी भी कमजोर नहीं होती कि राजनीतिक दलों और राजनीतिज्ञों की गंभीर गलतियों को भूल जाए। इसीलिए चुनावों में सरकारें अक्सर बदल जाया करती हैं। विचारधारा राजनीति की आत्मा होती है। जिन राजनीतिक दलों का भारतीय लोकतंत्र में पराभव हुआ है या हो रहा है उन्हें यह समझना चाहिए कि उनसे गलती कहां हो रही है? आखिर जनता को एक दल और दूसरे दल में फर्क करने का कोई तो ठोस आधार चाहिए। शिवसेना को आज यह नहीं समझ में आ रहा कि भविष्य में उसे अपनी वैचारिक जमीन छोड़ने की क्या कीमत चुकानी पड़ेगी? जो लोग शिवसेना के साथ हैं वे जरूर असहज होंगे, क्योंकि जो सैद्धांतिक लड़ाई उन्होंने कांग्रेस और राकांपा के खिलाफ दशकों से लड़ी, आज उस पर पानी फिर गया। आखिर ऐसे लोग क्यों न भाजपा की ओर आकृष्ट हों? यहां वे वैचारिक रूप से अपने को ज्यादा सहज पाएंगे। शिवसेना जैसा हश्र कांग्रेस का भी होगा।

महाराष्ट्र में शिवसेना सरकार में सम्मिलित होकर पार्टी ने देश में क्या कुछ नहीं खोया? आखिर जो कांग्रेस भाजपा को अपना धुर वैचारिक विरोधी मानती है वह उसके उग्र-संस्करण शिवसेना से हाथ कैसे मिला सकती है? या तो कांग्रेस पहले गलत थी या अब गलत है? शिवसेना तो एक प्रादेशिक पार्टी है, उसका हित तो सीमित है, लेकिन कांग्रेस को तो अपने वृहद राष्ट्रीय हित के बारे में सोचना चाहिए था। क्या आगामी चुनावों में कांग्रेस के पास वैचारिक स्तर पर भाजपा के विरोध का कोई आधार होगा? यदि एक विचारधारा है तो नीतियां भी एक जैसी होंगी, निर्णय और कार्यक्रम भी एक जैसे होंगे। फिर जनता को पार्टी बदलने से क्या बदलाव मिलेगा?

अवधेश राजपूत

हार्वर्ड विश्वविद्यालय के विद्वान डेनिएल बेल ने अपनी पुस्तक 'विचारधारा के अंत' में कहा था कि किसी भी देश के उन्नत आर्थिक-सामाजिक ढांचे की संरचना में विकास की अहम भूमिका होती है, विचारधारा की नहीं। विभिन्न राजनीतिक विषयों जैसे लोक कल्याणकारी राज्य, शक्ति विकेंद्रीकरण, मिश्रित अर्थव्यवस्था और बहुलवाद पर सभी विचारधाराओं में मतैक्य है। एक अन्य अमेरिकी विद्वान फ्रांसिस फुकुयामा ने इसे आगे बढ़ाते हुए कहा था कि ऐसा नहीं कि विचारधाराओं का अंत हो गया है, वरन विचारधाराओं के संघर्ष में दक्षिणपंथी विचारधारा ने स्थाई रूप से पूर्ण विजय प्राप्त कर ली है और यही विचारधारा मानवता को भविष्य में निर्देशित करती रहेगी। एक तरह से देखा जाए तो दक्षिणपंथी शिवसेना द्वारा बहुत कम सीटें प्राप्त होने के बाद भी उद्धव ठाकरे को मुख्यमंत्री बनाना डेनियल बेल और फुकुयामा की भविष्यवाणियों को प्रमाणित करता है।

महाराष्ट्र के घटनाक्रम से भाजपा ने भी कुछ खोया है। भाजपा को अपनी विचारधारा के लिए जाना जाता है। भारतीय राजनीति में भाजपा का जिस तरह अभ्युदय हुआ वह फुकुयामा की थीसिस को सही साबित करता है। जब धीरे-धीरे केंद्र और राज्यों में भाजपा की स्वीकार्यता बढ़ती जा रही थी तब महाराष्ट्र में भाजपा को इतनी अधीरता क्यों दिखानी चाहिए थी कि भोर में शपथ ग्रहण हो जाए? देवेंद्र फड़नवीस ने सरकार न बनाने की बात कहकर स्वच्छ राजनीति का जो उदाहरण शुरू में दिया और जनता की सहानुभूति बटोरी उसे बेमतलब गंवाने का कोई कारण नहीं था।

कभी पूरे देश में मध्यमार्गी-वामपंथी विचारधारा का पर्याय रही और केंद्र और राज्यों में एकक्षत्र राज्य करने वाली कांग्रेस को आज एक पिछलग्गू पार्टी की भूमिका में क्यों आना पड़ा? इसका कारण यही है कि कांग्रेस ने 1960 के दशक से या उससे भी पहले अपनी वैचारिक आधारशिला को तोड़ना शुरू कर दिया था। केरल में 1959 में नंबूदरीपाद की विधिवत निर्वाचित वामपंथी सरकार को प्रधानमंत्री नेहरू ने तत्कालीन कांग्रेस अध्यक्ष इंदिरा गांधी के आदेश पर भंग कर इसका संकेत दे दिया था। इंदिरा गांधी ने 1969 में कांग्रेस का विभाजन कर इसे आगे बढ़ाया। 1975 में देश को आपातकाल में झोंक कर इंदिरा गांधी ने उसे और पुख्ता किया। इस परंपरा को आगे बढ़ाते हुए नरसिंह राव ने समाजवादी लीक से हटकर विश्व बैंक और अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष की पहल पर देश को 'उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण' की ओर ले जाकर उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि को और कमजोर किया। आज कांग्रेस के पास ऐसा कुछ भी नहीं जो भाजपा से अलग हो। इसके चलते जनता और मतदाता को भाजपा और कांग्रेस में कोई वैचारिक फर्क नहीं दिखता। जब दोनों दलों में फर्क करने के लिए नेतृत्व सामने आता है तब भाजपा बाजी मार ले जाती है। आज भले ही कांग्रेस को शिवसेना से वैचारिक धरातल पर कोई परहेज न हो, लेकिन यदि उसने अपने को वैचारिक धरातल पर अलग नहीं किया और नेतृत्व के स्तर पर कोई गंभीर आकर्षक विकल्प नहीं दिया तो पार्टी का भविष्य संदिग्ध है। राहुल गांधी हों या सोनिया गांधी, ये दोनों नेता कांग्रेस पार्टी से बड़े नहीं हो सकते। राजनीति कोई 'शार्ट-टर्म' गेम नहीं, राजनीतिक दलों को लंबी रेस के घोड़े तैयार करने होंगे। जो दल राजनीति में विचारधारा और महत्वाकांक्षा का बेहतर समिश्रण कर सकेंगे, भविष्य उन्हीं का है। महाराष्ट्र में यह समिश्रण नहीं हो पाया। चूंकि यहां विचारधारा को तिलांजलि देकर महत्वाकांक्षा को आगे बढ़ाने का काम किया गया इसलिए इस प्रयोग की सफलता संदिग्ध है।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक एवं सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ सोसायटी एंड पॉलिटिक्स के निदेशक हैं)

response@jagran.com

राजनीतिक विमर्श का सिमटता दायरा

गिरीश्वर मिश्र

संसद और विधानसभाओं का उदार वैचारिक माहौल बिगड़ते जाना गंभीर चिंता का विषय बनना चाहिए

भारत की विचार-परंपरा में स्वतंत्र चिंतन की जड़ें अत्यंत प्राचीन और गहरी हैं। दर्शन के क्षेत्र में विभिन्न प्रश्नों को लेकर वाद-विवाद एक आम सी बात है। यहां वाद-विद्या अपने आप में ज्ञान की एक शाखा के रूप में विकसित हुई थी। भिन्न मतों के बीच शास्त्रार्थ की कथाएं भी प्रसिद्ध हैं। निकट अतीत में स्वतंत्रता संग्राम के दौरान भी लोक जीवन में विभिन्न मुद्दों पर विमर्श के दौर चलते रहे। संविधान सभा में भी भिन्न विचार वालों को शामिल किया गया था। कहा जा सकता है कि भारतीय लोकतंत्र का जन्म एक उत्कृष्ट किस्म के राजनीतिक विमर्श की परिणति है। अपने निजी अनुभवों और विभिन्न देशों के विचारों का लाभ उठाते हुए संविधान सभा ने बाबा साहब डॉ. आंबेडकर के सहयोग से भारत के लिए जिस संविधान का निर्माण किया वह एक उच्चकोटि दस्तावेज है। संविधान सभा में भारत के सामाजिक, धार्मिक और वैचारिक विविधता का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य शामिल थे। निजी और दलगत विचार भिन्न होते हुए भी उन्होंने एक नए राज्य की संवैधानिक व्यवस्था का खाका तैयार किया और गहन तथा खुले मन से किए गए विचार-विमर्श के बाद सहमति पर पहुंचे।

स्वतंत्रता मिलने के पहले और बाद के कुछ वर्षों तक भारतीय संसद में विभिन्न मुद्दों को लेकर उच्च स्तर का विचार-विमर्श होता था। यदि कोई सांसद अच्छा वक्तव्य देता था तो पार्टी लाइन से हट कर उसकी तारीफ भी की जाती थी। आलोचनाओं को सुनना और उनको गुन कर अपने में बदलाव लाना अस्वाभाविक नहीं था। धीरे-धीरे संसद और विधानसभाओं का उदार वैचारिक माहौल बिगड़ने लगा। इन संस्थाओं के कार्य दिवसों की संख्या घटती गई है। इस स्थिति के चलते बहुत से काम-काज बिना आवश्यक विचार किए फटाफट निपटा दिए जाते हैं। बिहार, हरियाणा और पश्चिम बंगाल की विधानसभाओं में लगभग बिना विचार किए बिल प्रस्तुत करने और तत्काल पास करने की घटनाएं आम हो चुकी हैं। संसदीय समितियां की कार्यप्रणाली भी बहुत संतोषजनक नहीं है। आवश्यक संसाधनों, तत्परता की कमी और विशेषज्ञता के अभाव से वे ठीक ढंग से काम नहीं निपटा पातीं। आजकल कुछ ही सांसद प्रबुद्ध और विशेषज्ञ होते हैं। केवल वे ही चर्चा की गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। जो जातिबल, बाहुबल या धनबल की बदौलत संसद में पहुंचते हैं वे बहस में कोई योगदान नहीं करते। उनमें से कई ऐसे भी होते हैं जो पूरे कार्यकाल में कोई सवाल भी नहीं पूछते। ज्यादातर सांसद पार्टी की बात को दोहराना ही अपना धर्म मानते हैं। संप्रग शासन के दौर में पार्टी नेता सोनिया गांधी और पूर्व प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह संसद में बहुत कम बोलते थे। वे मीडिया से भी दूर रहते थे। वे अपनी अच्छी नीतियों के लिए भी जन-समर्थन नहीं जुटा पाते थे। मोदी सरकार इस दृष्टि से मुखर तथा सक्रिय है। संसदीय कार्य की दृष्टि से भी उसकी उपलब्धियां उल्लेखनीय हैं।

राजनीतिक विमर्श के लिए संस्थाओं के मानकों की रक्षा और भरपूर आदर होना चाहिए। उदाहरण के लिए राज्य और शासन भिन्न और परस्पर संबंधित संस्थाएं हैं। पूरे समाज के प्रतिनिधित्व का दायित्व होने के कारण राज्य को हर तरह के भेद-भाव से ऊपर उठ कर निष्पक्ष और तटस्थ रूप से जनहित की बात सोचनी चाहिए। शासन तंत्र और न्यायालय आदि के लिए निष्पक्षता, नियम पालन आदि बेहद महत्वपूर्ण होते हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिक हित और देशहित के बीच संतुलन बनाना जरूरी होता है। आज सत्ता के लिए हर तरह के समझौते हो रहे हैं। एक राजनीतिक दल और उसकी सरकार के बीच का अंतर बनाए रखना जरूरी है, क्योंकि सरकार पूरे देश के लिए होती है, जबकि पार्टी का दायरा सीमित होता है। सरकारी तंत्र का पार्टी के लिए दुरुपयोग किसी भी तरह न्यायसंगत नहीं ठहराया जा सकता। समानता, समता और बंधुत्व जैसे लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सरकार को खुले मन से सबके लिए और सबके साथ मिलकर कार्य करना जरूरी होता है।

विमर्श का एक आयाम नीतियों के लिए परामर्श या संसद में चर्चा करना भी है। कई बार सरकार द्वारा व्यापक महत्व के अंतरराष्ट्रीय करार और दूरगामी व्यापारिक फैसले बिना संसद में बहस के ले लिए जाते हैं। दूसरी ओर शिक्षा जैसा सामाजिक दृष्टि से अतिमहत्वपूर्ण विषय कभी भी गंभीर चर्चा का विषय ही नहीं बन पाता। पांच साल से शिक्षा नीति का मसौदा बन रहा है। अभी भी यह पूरा नहीं हुआ है। सरकार ने वर्षों से शिक्षा पर 'सेस' लगा रखा है, परंतु जमीनी हकीकत यह है कि शिक्षा के लगभग हर स्तर पर अध्यापकों की कमी बनी हुई है। संसाधनों का अभाव है। कुशलता के अभाव में शिक्षा रोजगार दिलाने में असफल हो रही है। मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रश्न इस राष्ट्र के सामने ज्यों का त्यों मुंह बाए खड़ा है। शिक्षा के अनियंत्रित निजीकरण की अपनी कहानी है। शायद सरकारी सोच यह है कि यदि और सब ठीक हो जाएगा तो शिक्षा खुद ठीक हो जाएगी, जबकि बात ठीक उल्टी है। यदि शिक्षा ठीक हो जाए तो बहुत सारी समस्याओं का समाधान हो सकेगा। शिक्षा पूरे देश के वर्तमान और भविष्य से जुड़ा मुद्दा है। शिक्षा के प्रति उदासीनता आज घातक सिद्ध हो रही है।

लोकतंत्र में विमर्श के स्वरूप को निर्धारित करने में मीडिया की भूमिका को भी नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। कुछ थोड़ी-सी अच्छी पत्रिकाओं के अलावा दैनिक समाचार पत्र और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया हमारे सामने एक मिश्रित चित्र प्रस्तुत करते हैं। कुछ तो अच्छे हैं, पर ज्यादातर प्रबुद्ध पाठक या दर्शक को निराश करते हैं। फैशन और संभ्रांत जनों पर मीडिया द्वारा अधिक ध्यान दिया जाता है, जबकि गरीबों, गावों और उपेक्षितों पर बहुत कम नजर पड़ती है। फलतः विरोध और प्रतिकार का जरूरी पक्ष दबा ही रहता है। ऐसे में विचारों की सिकुड़ती परिधि और सघन विचार की परंपरा दुर्बल होने के साथ देश की नैतिक और राजनीतिक संस्कृति में क्षरण के लक्षण दिखने स्वाभाविक हैं। कुल मिलाकर उच्च आर्थिक छलांग के लिए तत्पर आज के भारत में राजनीतिक आचार, नैतिकता और लोकतंत्र की रक्षा तथा विकास की अनदेखी नहीं की जा सकती। इसके लिए लोक में विमर्श की संस्कृति को पुष्ट करना ही होगा।

(लेखक पूर्व प्रोफेसर एवं पूर्व कुलपति हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

अवसर की महिमा

जीवन को श्रेष्ठतर, स्मरणीय एवं उदाहरण प्रस्तुत करने योग्य बनाने के लिए ईश्वर ने मनुष्य को जीवनरूपी सुंदरतम उपवन दिया। साथ ही प्रसूनरूपी दुर्लभ अवसर भी। शुभ अवसरों की गंगा प्रभु क्षण-क्षण हमारे चहुंओर प्रवाहित करते रहते हैं। आवश्यकता केवल उन दुर्लभ अवसरों को सहेजने की है। सही समय पर सही अवसर का सदुपयोग जीवन को स्मरणीय उप्लब्धियों की मंजिल तक पहुंचने में कोर-कसर नहीं छोड़ता। इसके विपरीत अनमने भाव से प्रभु कृपा से इतर दुर्भावनापूर्ण अवसर का दामन थाम आने वाला कल कष्टमय सिद्ध हो सकता है।

अवसर जीव से सकारात्मकता एवं कर्मठता की मांग करता है। कहा भी गया है कि अवसर उसकी मदद कभी नहीं करते जो अपनी मदद नहीं करते। जीवन में प्रभु की कृपा से कोई दुर्लभ अवसर प्राप्त होने पर भी अज्ञान, अहंकार, विपरीत परामर्श, पद का प्रदर्शन दैव-अनुकंपा में मिली उस दुर्लभ अवसर रूपी पूंजी को पल में धूल-धूसरित करने का कारक बन सकते हैं। फिर उसके पश्चात का पश्चाताप जीवन में क्षण-क्षण मरने के लिए पर्याप्त है।

कोई भी शुभ अवसर प्रभु द्वारा मनुष्य को केवल शुभ कार्य, समाज को समुचित न्याय एवं मानवता के कल्याण के लिए ही प्रदान किया जाता है, लेकिन सत्ता पाते ही जो सद्मार्ग एवं प्रभु निर्देशों की अवहेलना का दुस्साहस जुटाता है तो उसका पतन अवश्य होता है। वस्तुतः प्रभु-प्रदत्त अवसर किसी के ज्ञान, सूझबूझ, संयम, संस्कार, परमार्थ, निष्पक्षता, शक्ति, भक्ति, मर्यादा, सहिष्णुता, धैर्य एवं जीवन दर्शन का परीक्षण भी करता है। प्रभु कृपा के शुभ संकल्पों से अनुबंधित व्यक्ति अपने दुर्लभ-अवसर अवधि के स्वर्णिम काल को अविस्मरणीय भी बना सकता है। इसके विपरीत चलनेवाला स्वयं एवं अपने वरिष्ठ जनों की स्थापित कुलीन आदर्श परंपरा को प्रश्नचिह्नित भी कर सकता है। अच्छा हो इन दुर्लभ अवसरों की महिमा समझ, इनसे स्वयं एवं जगत के कल्याण के सुखद मार्ग खोजे।

प्रो. दिनेश चमोला 'शैलेश'

खुद से करें भ्रष्टाचार रोकने की शुरुआत

देवेंद्रराज

हमारे जीवन का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं बचा, जहां भ्रष्टाचार के असुर ने अपने पंजे न गड़ाए हों

ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल के ताजा सर्वे के मुताबिक भ्रष्टाचार के मामले में 180 देशों की सूची में भारत इस साल 79वें पायदान पर है। हालांकि भारत की रैंकिंग पिछले साल के मुकाबले तीन पायदान सुधरी है। पिछले साल देश 81वें क्रम पर था। इस साल रिश्वत देने वालों की संख्या 51 प्रतिशत है, जबकि पिछले साल यह संख्या 56 प्रतिशत थी। रिपोर्ट के अनुसार पासपोर्ट और रेल टिकट जैसी सुविधाओं को केंद्रीकृत और कंप्यूटराइज्ड करने से भ्रष्टाचार में कमी आई है।

हालांकि सरकारी दफ्तर रिश्वतखोरी का बड़ा अड्डा बने हुए हैं। इनमें भी सबसे ज्यादा रिश्वतखोरी राज्य सरकारों के ऑफिसों में होती है। गौरतलब है कि सर्वे में 1.90 लाख लोगों को शामिल किया गया। इसमें 64 प्रतिशत पुरुष और 36 प्रतिशत महिलाएं शामिल हुईं। सर्वे में 48 प्रतिशत लोगों ने माना कि राज्य सरकार या स्थानीय स्तर पर सरकारी दफ्तरों में भ्रष्टाचार रोकने के लिए कोई कारगर कदम नहीं उठाए हैं। लोगों ने 2017 में हुई नोटबंदी की वजह से भी भ्रष्टाचार में गिरावट को कारण माना है। ऐसे लोग जो यह मानते हैं कि रिश्वत के बिना काम नहीं हो सकता, उनकी संख्या पिछले साल के मुकाबले 36 प्रतिशत से बढ़कर 38 प्रतिशत हो गई। जो रिश्वत को महज एक सुविधा शुल्क समझते हैं उनकी संख्या में भी बढ़ोतरी हुई है। 2018 में 22 प्रतिशत के मुकाबले ऐसे मानने वाले लोगों की संख्या 26 प्रतिशत हो गई है। जहां तक बात रिश्वत लेने वाले दफ्तरों की है तो जमीन से जुड़े मामलों में सबसे अधिक रिश्वत दी गई। 26 प्रतिशत लोगों ने इस विभाग में रिश्वत दी, जबकि 19 प्रतिशत ने पुलिस विभाग में रिश्वत दी।

भ्रष्टाचार हमारी व्यवस्था को खोखला कर रहा है। बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार आचरण दोष का ही परिणाम है। हर दिन भ्रष्टाचार के काले करनामे उजागर हो रहे हैं। देश में भ्रष्टाचार को मिटाकर सभी नागरिकों को रोटी, कपड़ा और मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करना सरकार का धर्म है, लेकिन आजादी से लेकर अब तक देश की सरकारें भ्रष्टाचार को मिटाने में विफल रही हैं। दरअसल जब तक भ्रष्टाचार की राजनीतिक बुनियाद पर चोट नहीं की जाती, भ्रष्टाचार के खिलाफ कोई भी मुहिम तार्किक परिणति तक नहीं पहुंच सकती।

भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा प्रचलित रूप रिश्वतखोरी है। लोगों में रिश्वत देकर काम निकलवाने की प्रवृत्ति घर करती जा रही है। जनमानस में यह धारणा बैठ गई है कि रिश्वत देने से हर कठिन काम सरल हो जाता है। सरकारी दफ्तरों में रिश्वत लेने का सिलसिला बहुत पुराना है। रिश्वतखोरी रोकने के लिए सर्वप्रथम हमें खुद को बदलना होगा, क्योंकि रिश्वत देकर परेशानियां खड़ी करने वाले भी हम ही हैं और बाद में सरकार को कोसने वाले भी हम ही हैं। अगर भ्रष्टाचार से निजात पाना है तो हमें खुद से ही शुरुआत करनी होगी, रिश्वत न देने का संकल्प लेना होगा। फिर मतदाता के तौर पर भी हम भ्रष्टाचार से लड़ने में काफी अहम भूमिका निभा सकते हैं। साथ ही सरकारों को अपने भ्रष्टाचार विरोधी वादों को पूरा करने के लिए ज्यादा प्रयास करने होंगे।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

कहां गई है साख?

प्रदीप सिंह का आलेख 'सत्ता के साथ साख भी गई' पढ़ा। उन्होंने भाजपा की जो तीन गलतियां बताई हैं उससे मैं असहमत हूं। वे कहते हैं कि भाजपा को रह-रहकर कोसने वाली शिवसेना से गठबंधन करना पहली गलती थी। यह ठीक है कि शिवसेना यदा-कदा भाजपा को गरियाती रहती थी, किंतु भाजपा का जो कोर मतदाता है, वह अपनी हिंदुत्व निष्ठा के कारण दोनों में संबंध-विच्छेद उस समय-बिंदु पर कतई पसंद नहीं करता। वैसे भी जहां तक शिवसेना के नेताओं के कथनों का प्रश्न है तो केवल दो माह पहले सितंबर 2019 में उद्धव ने सोनिया-राहुल को जेल भेजने की मांग की थी। जाहिर है किसी न किसी को कोसते रहना शिवसेना नेताओं का स्वभाव है। लेखक ने दूसरी गलती बताई है, उन शरद पवार को ईडी का नोटिस भिजवाना, जिन्होंने 2014 में भाजपा की सरकार को सदन में बचाया था। यदि नोटिस न भेजा जाता तो भाजपा इस आरोप को निमंत्रण देती कि भ्रष्टाचार के खिलाफ उसकी शून्य-सहनशीलता की घोषणा खोखली है। यह आरोप भाजपा की यूएसपी का खात्मा कर उसे ज्यादा बड़ा नुकसान पहुंचाता। तीसरी बड़ी गलती बताई गई है भाजपा का सत्ता के लिए उतावलापन! मुझे आश्चर्य है। क्या लेखक सोशल मीडिया पर दृष्टि नहीं डालते। इस तीसरी कथित गलती को कितना सराहा गया है वहां। भाजपा के पक्ष में एक बड़ा जन-समर्थन का ज्वार इस कथित सत्ता की जल्दबाजी ने खड़ा किया है। लेखक का कहना है कि इस सारे प्रकरण ने शरद पवार का कद बढ़ा दिया है, तो यह तो भाजपा के हित में ही है। शरद कांग्रेस पर और अधिक हावी होंगे, और नौसिखिए नेताओं की मारी कांग्रेस और अधिक नतमस्तक होती चली जाएगी। यह परिदृश्य राष्ट्रीय एवं प्रादेशिक राजनीति में लोगों को नजर आ रहा है। कहीं ये मोदी-पवार का मिला-जुला खेल तो नहीं, इस अनुमान का सही उत्तर निकट भविष्य में ही मिल जाना चाहिए।

अजय मित्तल, मेरठ

प्रकृति से खिलवाड़

आज जिसे देखो वही प्रकृति का दोहन करने में लगा है। पहाड़ों में पानी रोका जा रहा है, बांध बनाए जा रहे हैं तथा वनों की कटाई के परिणाम स्वरूप भूस्खलन हो रहे हैं। कहीं जरूरत से ज्यादा बाढ़ और कहीं सूखा पड़ रहा है। पर्यटक पहाड़ों में गंदगी और प्लास्टिक कचरा फैला रहे हैं। हमारे इस प्रकृति के दोहन के कारण वो समय-समय पर कुपित होकर हमें सबक सिखाकर अपनी श्रेष्ठता साबित करती रहती है, लेकिन हम फिर भी बाज नहीं आते। धरती का तापमान बढ़ रहा है। ग्लेशियर पिघल रहे हैं, समुद्र का जल स्तर बढ़ रहा है। भविष्यवाणी की जा रही है कि 2050 तक तटवर्ती शहरों के अस्तित्व को खतरा पैदा हो सकता है। प्रकृति के साथ ये मानवीय खिलवाड़ एक भयानक विनाश को आमंत्रित कर रहा है।

चंद्र प्रकाश शर्मा, दिल्ली

सिद्धांतविहीन राजनीति

महाराष्ट्र की राजनीति से एक बात स्पष्ट हो चुकी है कि राजनीतिक दलों में विचारधारा का महत्व नगण्य हो चुका है। दूसरी तरफ अपनी निजी महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में नेतागण जनमत का अपमान करने से भी नहीं चूकते। हालांकि एक राजनीतिक दल का उद्देश्य सत्ता पाना होता है, किंतु सिद्धांतविहीन राजनीति कतई उचित नहीं है। ऐसे उदाहरण भारतीय लोकतंत्र को स्थिरता एवं मजबूती तो प्रदान नहीं करते, अपितु इसके उलट संवैधानिक मूल्यों की बलि देते प्रतीत होते हैं। इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता है कि बहुमत ना मिलने की स्थिति में जनमत की स्वाभाविक अभिव्यक्ति शासन में किस प्रकार से हो।

अंजन मिश्रा, दिल्ली

ऐसे करें पर्यावरण की रक्षा

देश में तीव्रगति से वनों की कटाई से इसका सीधा प्रभाव वातावरण और हमारे स्वास्थ्य पर पड़ रहा है। इन समस्याओं का एक सीधा उपाय पौधरोपण है। इसका तरीका यह भी हो सकता है कि अगर प्रत्येक व्यक्ति अपने बच्चों की शादी में निमंत्रण पत्र स्वरूप एक पौधा लगा गमला भेंट करे तो भारत में प्रतिदिन कई लाख नए पौधों की शुरुआत हो सकती है।

gaganbansal12345@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 * इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त।